ॐ

वर्ष १
अंक १
क्रमांक
६३

वैदिकधर्म

फाल्गुन
सं०१९८१
मार्च
स०१९२५

वैदिक तत्व ज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

मातृभूमिकी सेवा।

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं
धर्मणा धृताम्। शिवां स्योनामनुचरेम विश्वहा॥
अथर्व. १२।१।१७

औषधियोंकी (मातरं) उत्पत्ति करनेवाली, (शिवां) कल्याण कारिणी, (स्योनां) सुखदायिनी, और (धर्मणा धृतां) धर्मसे धारण की हुई (ध्रुवां पृथिवीं भूमिं) स्थिर और विस्तृत मातृ भूमिकी (विश्वहा) सर्वदा (विश्व-स्वं) सर्वस्व अर्पण करके (अनु चरेम) सेवा करेंगे।

अनेक औषधियां उत्पन्न करनेवाली, कल्याण करके सुख देनेवाली और हमारे धर्माचरणसे जिसका धारण होता है उस हमारी मातृभूमिकी हम सर्वदा सर्वस्व अर्पण करके सेवा करेंगे।

बाह्य परिस्थितिपर अपना अधिकार।

योगसाधनमें अपनी आत्मिक शक्तिपर अचल विश्वास, बुद्धिमें सद्भावनाओंकी स्थिरता, मन का संयम, इंद्रियोंका दमन,तथा शरीर की शुद्धि करना अत्यंत आवश्यक है, इस विषयमें किसीका भी मतभेद नहीं हो सकता; क्योंकि सब धार्मिक ग्रंथ इस विषयमें साक्षी देरहे हैं, और साधन करने वालोंका अनुभव भी यही है। परंतु अपनी बाह्य परिस्थितिपर भी योगीको अपना अधिकार जमाना चाहिये, अपनी बाह्य परिस्थिति अपने योग्य करनी चाहिये;इस विषयमें बहुत थोडे लोगोंने विचार किया है, और इसविषय पर अत्यंत अल्प लिखा गया है। बाह्य परिस्थितिपर अपना अधिकार जमानेके विषयमें योग के ग्रंथोंमें जो स्थान स्थानपर उल्लेख आते हैं, वे इतनी गुप्तरीतिसे और गुह्य सांकेतिक शब्दोंसे आते हैं, कि उनका स्पष्ट ज्ञान साधारण पाठकोंको होना अत्यंत कठिन है, इसलिये इसविषयमें थोडासा वर्णन इसलेखमें करना है। वेद कहता है कि—

अहमिंद्रो न पराजिग्ये।

ऋ. १०।४८।५

" मैं इंद्र हूं, मेरा पराजय नहीं होगा। " यह सत्य सिद्धांत है। आत्मा ही इंद्र है, और उसका पराभव नहीं होसकता। जिस समय यह अंदरका इंद्र अपने सब इंद्रियोंको अपने आधीन करके शत्रुओंके साथ युद्ध करेगा,तब निःसंदेह आत्माकाही विजय होगा। परंतु इस समय इंद्रियां प्रमत्त हैं, और उनके जेलखानेमें इंद्र पडा है, उसके मनमें जो आता है उस भावसे वही काम आत्माको करना ही पडता है।यह आत्माकी परतंत्र

परिस्थिति है; उसके नौकरोंने ही उसको बंदिगृहमें रखा है, वे जैसा चाहे वैसा इसको नचाते हैं, और आत्मा इंद्रियोंके पूर्ण आधीन होकर उनकी आज्ञाका पालन कर रहा है!!! इसके अंदर जब आत्म विश्वास उत्पन्न होगा, और वह अपनी शक्ति को जानकर अपने शत्रुओंका पराजय करनेके उद्देश से जिस दिन खडा होगा; उसी दिन उसकी स्वतंत्रता होगी, यही मुक्ति है। हरएक को इसी मार्गसे जाना है।

" इंद्र " वह होता है कि, जो "(इन्) शत्रुओंका (द्र) विदारण करता है। " अर्थात् जो अपने शत्रुओंका पराभव करनेकी शक्ति रखता है, वही इंद्र है। इंद्र अंदर है, और उसके शत्रु उसके बाहिर हैं। शत्रुओंने उसको घेरा हुआ है, शत्रुओंका आवरण इसके बाहिर से है; इसीलिये इंद्रके शत्रुका नाम " वृत्र " (अर्थात् घेर कर लडनेवाला) है। जो प्रतिकूलता करते हैं, वे शत्रु और जो अनुकूल होते हैं, वे मित्र कहे जाते हैं। वास्तविक देखा जाय, तो इंद्रका कोई शत्रु नहीं है, तथापि जबतक इंद्र अपनी शक्तिसे अपरिचित होता है, तब तक सब अन्य शक्तियां उसके विपरीत कार्य करतीं हैं। इसलिये अपनी शक्तिकी पहचान होना चाहिये। योगसे ही अपनी शक्ति जानी जा सकती है। वस्तुतः सब इंद्रियां आत्माकी उन्नतिके लिये ही उत्पन्न हुई हैं, परंतु येही इंद्रियां आत्मोन्नतिके विरुद्ध कार्य में रमतीं हैं, और इसी कारण शत्रुवत् बन जातीं हैं। इससे आत्माके शत्रुओंका पता लग सकता है। (१) विपरीत बुद्धि, (२) हीन मन, (३) कुत्सित इंद्रियां, (४) पराधीन शरीर, (५) विपरीत कुटुंब स्थिति, (६) जातीकी हीन अवस्था, (७) राष्ट्र की अवनति, (८) प्रतिकूल गृह स्थिति, (९) हीन समाज स्थिति, (१०) अधार्मिक वायुमंडल; ये सब आत्माके शत्रु हैं। इन पर अपना प्रभाव जमाना अत्यंत आवश्यक है। आसनोंके अभ्याससे शरीर स्वाधीन हो जाता है, प्रत्याहार के अभ्याससे इंद्रियां अनुकूल होतीं हैं, । एकाग्रताके अभ्याससे मन आधीन होता है, वारंवार शुद्ध भावना के चिंतन करने से बुद्धि भी अनुकूल हो जाती है अर्थात् शरीर की आंतरिक शक्तियों की स्वाधीनता करनेका कार्य उक्त प्रकार सिद्ध होता है। इसका

वर्णन स्थान स्थान पर है। इससे जो बाहिरकी परिस्थिति है, उसपर अपना अधिकार जमाना और उस परिस्थिति को अपने आधीन करनेका विचार इस लेखमें करना है।

शीत उष्ण का विचार इसमें पहिला है। हरएक का अनुभव है कि, थोडीसी सर्दी हुई तो जुकाम हो जाता है, और थोडीसी उष्णता होनेसे खुष्की हो जाती है। इसलिये हवा की न्यूनाधिक उष्णतापर अपना स्वास्थ्य अथवा रोगीपन रहता है। यह अवस्था बहुत बुरी है। शरीरको शीत, उष्ण और वृष्टि सहन करनेका अभ्यास अवश्य करना चाहिये। थोडीसी सर्दी हवाके बढनेसे, किंचित् उष्णता बढजाने से अथवा थोडीसी वृष्टि होनेसे शरीरपर कोई बुरा परिणाम नहीं होना चाहिये। शीत उष्ण,आर्द्रता खुष्की, आदि द्वंद्व अनेक हैं। इन द्वंद्वोंको जीतना चाहिये। शीत सहन करनेकी शक्ति बढानी चाहिये, इसी प्रकार उष्णता सहन करनेकी शक्ति भी बढानी चाहिये। इसी रीतिसे अन्य द्वंद्वोंके विषयमें समझ लीजिये। प्रायः मनुष्य थोडीसी सर्दी लगने लगी, तो कंबल पहनते हैं; थोडीसी धूप लगने लगी, तो छायामें जाते हैं; इसलिये शरीरकी त्वचा अत्यंत कोमल हो रही है। अपनी परिस्थितिके अनुसार शीतोष्णादि द्वंद्व सहन करनेका अभ्यास बढाने से शरीरमें ऐसी शक्ति उत्पन्न होती है कि, उस को हवामान बदलनेसे कष्ट नहीं होते। कई मनुष्य हमने ऐसे देखे हैं कि, जो बडी सर्दीमें नंग शरीर फिरते रहते हैं; तथा बडी धूपमें भी दिनभर काम करते रहते हैं, तोभी उनको कोई कष्ट नहीं होता। पाठक इस शीतोष्णादि द्वंद्व सहन करनेका तप अपनी परिस्थितिके अनुसार करके इस बाह्य परिस्थितिपर अपना प्रभुत्व जमालें। और शरीरको ऐसा सख्त बनावें कि, सर्दीगर्मीसे कोई बुराई उसपर न हो। सर्दी गर्मीमें रहनेका अभ्यास करनेसे इस प्रकार की शक्ति शरीरमें आजाती है।

शीतोष्णता की अर्थात् आब हवा की परिस्थिति पर उक्त प्रकार प्रभुत्व स्थापित करनेके साथ साथ गृहपरिस्थितिको भी अपने अनुकूल करना चाहिये। इसविषयमें पहिली बात अपने घरकी और घरके बाहिर की स्वच्छता रखने की है। आप अपने कमरेसे स्वच्छता का प्रारंभ कीजिये; इसमें

आप स्वयं अपनी, अपने कपडे लत्तोंकी, तथा अपने कमरेकी स्वच्छता रख सकते हैं। अपने पहनने के कपडों की स्वच्छता स्वयं की जा सकती है, गरमीके दिनों में पसीनेकी बदबू कपडोंको बडी दूरसे आती रहती है; तथापि उसका विचार न करते हुए वैसेही अमंगल कपडे कई लोग पहनते हैं !! वस्तुतः कपडे प्रतिदिन धोये हुए पहनने चाहिये। प्रतिदिन कपडे धोनेके लिये कोई अधिक व्यय करना नहीं पडता। स्वयं ही धोये जा सकते हैं। इसी प्रकार अपने कमरे की स्वच्छता ऐसी रखनी चाहिये कि, उसमें थोडा भी कचरा किसी स्थानपर न रहे। कई लोग अपने सब जूते अपने कमरे में लाते हैं, और जमीनको कभी झाडूका स्पर्श न कहीं करते !! जूतेके नीचे सब मार्गपरका मैला लगता है, और वही घरमें आता है; इससे अनेक बीमारियोंके कृमी घरमें आते हैं और घरमें अनेक बीमारियां होतीं हैं। शुद्धता करनेसे बीमारियां दूर हो सकतीं हैं। इस लिये योगके यमनियमोंमें (शौच) शुद्धताकी इतनी प्रशंसा की है। अपने कमरेकी सब चीजें ऐसी योग्य रीतिसे व्यवस्थित लगानी चाहिये कि, जो व्यवस्था देखनेमें सुंदर भी दीखे और समयपर विना आयास आवश्यक पदार्थ मिल भी जांय। प्रत्येक पदार्थके लिये स्थान नियत रहे और नियत स्थानमें ही निश्चित पदार्थ रखा जाय। ऐसा करने से समय की बहुत बचत हो सकती है। जो विचार अपने कमरे के विषयमें है वही अपने घरके और घरके बाहिरके स्थानके विषयमें है।

अपने कमरेमें और घरमें सूर्य प्रकाश और शुद्ध वायु विपुल आनेका प्रबंध चाहिये। सूर्य प्रकाशसे और शुद्ध वायुसे आयुष्यकी वृद्धि होती है, ऐसा वेदमें अनेक स्थानपर कहा है; उसका अनुसंधान यहां करना उचित है, देखिये—

दीर्घ त आयुः सविता कृणोतु ॥
अ. १४ । १ । ४७

वात आवातु भेषजं शंभु
मयोभुवो हृदे॥ प्र ण आयूंषि
तारिषत् ॥
ऋ. १० । १८६ ।१

" (१) सविता तेरी आयु दीर्घ करे। (२) वायु औषध लावे, वह शांतिदायक और कल्याण कर्ता है, वह हम सबकी आयु बडी दीर्घ करता है।" इस प्रकार सूर्यप्रकाश और वायुका दीर्घ आयु

तथा आरोग्यके साथ संबंध है। इसलिये अपने घरमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि, जहांकी स्वच्छता सूर्य प्रकाश और वायु प्रतिदिन किया करें।

अपने घरमें एक कमरा कमसे कम ऐसा रखना चाहिये कि, जहां शांति के साथ " परमेश्वरकी उपासना " करना संभव हो। उस कमेरे में सब पदार्थ ऐसे ही हों, कि जो शांतिके सूचक हों। तथा किसी प्रकारका उपद्रव होने की संभावना न हो। यह स्थान स्वाध्याय के लिये और ईश्वर उपासना के लिये आप अलग रखिये। इस कमरेमें जाते ही बाह्य अशांति बाहेर ही रहे, और शांति के वायु मंडलमें प्रवेश होनेका अनुभव आजाय। इस प्रकारके शांतिपूर्ण स्थानमें ईश्वर उपासना अच्छी हो सकती है, और स्वाध्याय भी बहुत ही अच्छा हो सकता है। उपासना के पश्चात् स्वाध्याय करनेके लिये आवश्यक योग्य पुस्तकें तथा इतर साधन इस कमरेमें ठीक प्रकार रखिये; ताकि स्वाध्याय समाप्त होने तक बाहिर जानेकी आवश्यकता उत्पन्न न हो। अत्यावश्यक कोश, लिखनेका सामान आदि सब इसलिये रखिये कि, उपासनाके पश्चात् के स्वाध्यायमें कई ऐसीं नवीन कल्पनायें सूझतीं हैं, उनको उसीसमय न लिखनेसे फिर स्मरण रखना कठिन हो जाता है,और आया हुआ आत्मिक संदेसा भूल जाता है। समय समय पर ऐसे शांत अवसर पर बहुत ही उच्च विचारों का स्फुरण हो जाता है, इसलिये उक्त सूचना लिखी है।

बाह्य परिस्थितिपर अपना प्रभुत्व प्रस्थापित करनेकेलिये ईश्वरउपासना और स्वाध्याय की आवश्यकता अत्यंत है। स्वाध्याय क अर्थ केवल पुस्तकों का अभ्यास नहीं है, प्रत्युत (स्व+अध्याय) अपना निरीक्षण और परीक्षण है। अपने अंदर जो गुण दोष होंगे, उनका विचार करना, और उनको दूर करना, इसी समय होता है। जो उत्तम ग्रंथ पढा जाय, उसके विचारोंको अपने जीवनमें ढालना चाहिये। कहांतक इस विषयमें कार्य हुआ है, और कहांतक अपनी उन्नति हो सकती है; इसका विचार करना और अधिक श्रेष्ठ बननेके लिये किस प्रकार आचरण करना चाहिये, इसका विचार करके; जो निश्चय होगा उसी प्रकार आचरण शुरू करना चाहिये। अपना समय,

अपने साधन, अपनी बुद्धि और अपने मित्रोंकी सहाय्यता इन सब का यथा योग्य उपयोग करके उन्नति अति शीघ्र, योग्य रीतिसे परंतु सुगम रीतिसे करनेकी उत्सुकता धारण करना योग्य है।

ईश्वरभक्ति, धर्म निष्ठा, सत्य परायणता, पापभीरुत्व, आत्माकी स्फूर्ति, अपनी महत्वाकांक्षा, उत्साह, आनंदी स्वभाव, आत्मविश्वास, सतत उद्योग करने की सिद्धता, यश न आनेपर भी पुनः पुनः प्रयत्न करके सिद्धितक पहुंचनेका दीर्घोद्योग आदि सद्गुण, जो विजय प्राप्तिके लिये अत्यंत आवश्यक हैं, आपके अंदर कितने हैं, और आप उनको किस प्रकार उपयोगमें ला रहे हैं, उनका अच्छा से अच्छा उपयोग किस रीतिसे हो सकता है, इसका विचार आप वारंवार कीजिये; और अपने गुण का यथायोग्य उपयोग करके अभ्युदय का साधन कीजिये। यह समझ लीजिये कि, आपके आत्मा में तथा मन आदि आपकी शक्ति यों में स्वभावतः कोई दोष नहीं हैं; परंतु उनका उपयोग जैसा चाहिये, वैसा योग्य मार्गसे आप नहीं कर रहे हैं, इस ~~इसम~~ लिये आपको यश विलंबसे प्राप्त होता है। इसीलिये अपने साधनों की उत्तम योजना कीजिये, तो आपकी सिद्धि आपके पास ही मिल जायगी।

कोई कार्य करना हो, तो आनंद के साथ उत्साह से कीजिये। एकही कार्य आनंदसे करनेसे परिणाम उत्तम होता है; परंतु दुःखी मनके साथ किया जाय, तो वही हानि करता है। इसलिये "सब अवस्था में आनंद मय उत्साह अपने पास सदा रखिये।"

अपने कार्य के लिये आपको साधनों की अत्यंत आवश्यकता होती है, कोई साधक योग्य साधनों के बिना कोई साध्य प्राप्त करही नहीं सकता है। इसलिये अपने अभ्युदयके लिये आपको चाहिये कि, आप सबसे उत्तम साधन— जितने उत्तम आपकी परिस्थितिमें प्राप्त हो सकते हैं—अपने पास कीजिये। साधनों की उत्तमतासे सिद्धि भी उत्तम प्राप्त हो सकती है। इसलिये उत्तम साधन पास करनेके लिये थोडासा अधिक व्यय कीजिये। वह अधिक व्यय अंतमें हानिकारक सिद्ध नहीं होगा। जो उत्तम सुतार अपने शस्त्र उत्तम रखता है, वही उत्तम कार्य कर सकता है। इसी प्रकार अन्य

कारीगरों तथा अन्य व्यवसायियों की बात है और वही योगादि साधनों के लिये भी उसी प्रकार लगती है।

कई कहते हैं कि, हमारे से यह नहीं हो सकता। ऐसा पहिले ही न कहिये। "अभ्यास और वैराग्य" से सिद्धि होती है। जो करना प्राप्त है, उसका निरंतर योग्य अभ्यास और उस से भिन्न व्यवसायोंकी ओर पूर्ण उदासीनता रखनेसे कार्य सिद्धि जलदी हो जाती है। कोई कार्य आपको पहिले न आता हो तो भी निरंतर अभ्यास करनेसे, अपना सब लक्ष्य उसीमें पूर्ण तथा अर्पण करनेसे, तथा अनावश्यक अन्य व्यवसायों की ओर प्रवृत्ति न रखनेसे, वही कार्य सुकर होता है। "अभ्यास और वैराग्य" के ये मूल भाव स्मरण रखिये, इनके अनुसार आचरण करनेसे बडा लाभ होगा।

किसी समय कार्य करके आप थक गये तो वैसाही कार्य न कीजिये। दो चार मिनिट आप दूसरे स्थान पर जाइये, एक दो आसन कीजिये, चार पांच प्राणायाम कीजिये तथा एक दो मिनिट मनको निर्विचार कीजिये। ऐसा करनेसे आपके अंदर नवजीवन उत्पन्न होगा, और आपका कार्य अच्छा होगा। ऐसा आप न करते हुए, यदि आप उसी निरुत्साहमें रहेंगे, और जबरदस्ती काम चलायेंगे, तो आपका आलस्य बढेगा, और आपसे योग्य कार्य नहीं होगा।

अपनी मानसिक मनन शक्ति को वारंवार चालना देनी चाहिये। नहीं तो मन ठीक प्रकार कार्य कर नहीं सकता। यह चालना सद्ग्रंथ पठनसे मिलती है। जो श्रेष्ठ पुरुष हुए हैं अथवा हैं, उनके विचारोंके पठनसेही अपनी विचार शक्ति को संचालन मिलता है। प्रत्येक मनुष्यके व्यवसायके अनुसार उसका मार्गदर्शक भिन्न हो सकता है। जैसा ब्राह्मणके लिये तत्त्व ज्ञान के ग्रंथ पठन करना, क्षत्रिय के लिये वीरोंके ग्रंथ पढना, वैश्यों के लिये श्रेष्ठ वणिग्वरों के विचार देखना, और शूद्रोंके लिये कारीगरोंके अनुभव देखना योग्य है। प्रत्येकको अपने स्वकीय कर्म में प्रवीणता संपादन करना योग्य है; इस लिये अपने व्यवसायका विशेष प्राविण्य और अन्योंका सामान्य ज्ञान प्राप्त करना योग्य है। अपने विचारोंको चालना देना भी इसी प्रकार करना चाहिये।

प्रत्येक ग्रंथ पढनेके समय तथा

प्रत्येक कार्य करने के समय इस का अवश्य विचार कीजिये कि, अपनी अवनति नहीं होगी, और निःसंदेह अपनी उन्नति होगी। इसलिये " आप ऐसे ग्रंथ पढिये कि, जो अपना आत्मिक बल बढा सकेंगे और अपनी वासना ओंको गिरायेंगे नहीं " तथा ऐसे मित्रोंके साथ रहिये कि जो उच्चविचार के वायुमंडलमें सदा रहते हैं, और उच्च विचार ही बोलते हैं। इतना ही नहीं, परंतु आप अपने नोकर भी ऐसे ही रखिये कि, जो आपके उत्साही विचारोंको द्विगुणित करेंगे, परंतु गिरायेंगे नहीं।

अपनी अवस्थामें जितना करना चाहिये उतना आप कर रहे हैं वा नहीं, तथा आपको जहां पहुंचना चाहिये, वहां आप पहुंच रहे हैं वा नहीं, इसका आप विचार कीजिये और योग्य दिशासे प्रयत्न कीजिये। यह स्मरण रखिये कि, आपको अपनी परिस्थितिका गुलाम रहना नहीं है; परंतु " आपको अपनी परिस्थितिका स्वामी बनना है। " गुलाम बननेसे उन्नति नहीं होगी परंतु स्वतंत्र स्वामी और प्रभु बननेसे ही उन्नति होती है। " धर्मका ध्येय स्वातंत्र्य है, " यह कभी न भूलिये।

" धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष " ये चार पुरुषार्थ आपके सामने हैं। (१) कर्तव्य पालन योग्य रीतिसे करना धर्मसे बोधित होता है, (२) योग्य रीतिसे धर्मानुकूल व्यवहार करके द्रव्यसंग्रह करनेका नाम अर्थ प्राप्ति है, (३) धर्मानुकूल और अपने प्राप्त धनके अनुसार सुखोपभोग लेना काम कहलाता है, और (४) इस प्रकार बंधनोंसे अपने आपको छुडवाकर अपने आपको स्वतंत्र करना मोक्ष होता है। मोक्ष, मुक्ति, स्वतंत्रता ही बंधसे मुक्त होने का नाम है।

यह मुक्ति जैसी वैयक्तिक है, उसी प्रकार सामाजिक, जातीय, राष्ट्रीय, प्रांतिक, औद्योगिक आदि प्रकारसे अनेक प्रकारकी है। मनुष्यको वैय्यक्तिक स्वतंत्रता प्राप्त करके ही चुपचाप बैठना उचित नहीं है; परंतु वह जिस समाज जाति, या राष्ट्रका अवयव है, उस की सार्व भौमिक स्वतंत्रताके लिये उसको अवश्यही प्रयत्न करना चाहिये। " अवयवकी इतिकर्तव्यता अवयवीके उत्कर्षके कार्यमें अपने आपको समर्पित करनेसे होती है, " अन्यथा नहीं। इस लिये वैयक्तिक पूर्णता प्राप्त

करनेके पश्चात् सार्वजनिक कार्य करनेकी आवश्यकता है। क्योंकि समाजकी पूर्णता के बिना वैयक्तिक पूर्णता का प्रकाश नहीं हो सकता। इसलिये इस समय बाह्य परिस्थितिके ऊपर प्रभुत्व संपादन करनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

घरकी परिस्थितिपर प्रभुत्व रखनेके उपाय पूर्व स्थलमें दिये हैं। घरकी अंदर और बाहिरकी स्वच्छता रखनेसे स्थानका प्रभुत्व सिद्ध होता है। अपनी सदा संतोषवृत्ति रखनेसे और दूसरोंके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करनेसे परिवारके सब आदमी अनुकूल होने हैं। शीतोष्ण सहन करनेके अभ्याससे और विपरीत अवस्थामें भी परमेश्वर निष्ठापूर्वक आनंदवृत्ति रखनेसे, जलवायु की अनुकूलता रहती है, तथा अपनी चित्तवृत्ति सब प्रकारकी अवस्थामें समानतासे प्रसन्न रहती है। प्रतिसमय अपनी सुधारणा, अपनी उन्नति, अपनी पवित्रता और संघके समेत अपना कल्याण करनेके विचारसे उन्नतिके नवीन विचार और नूतन मार्ग प्रतिदिन अपने पास आते हैं। कर्तव्य करनेका अधिकार अपना है, फल देने वाला समर्थ ईश्वर है, वह न्यायी दयालु और सर्वद्रष्टा है; वह सबका भलाही करता है, ऐसा विश्वास मनमें रखनेसे श्रद्धा का तेज अपने अंदर बढता है, और विपरीत परिस्थितिमें भी उसको अनुपम धैर्य प्राप्त होता है।

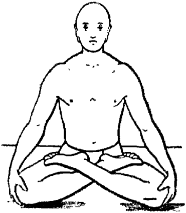
गृहपरिस्थितिका इस प्रकार वशीकरण करनेके पश्चात् ग्रामपरिस्थिति आती है। ग्राम की सहकारिसंस्था बनाकर उसमें सबप्रकारके अभ्युदयके कार्य करनेसे, तथा पूर्वकी अपेक्षा ग्रामकी सुधारणा करनेसे सब ग्राम एक विचारसे बांधा जाता है। इस प्रकार ग्रामका अभेद्य संघ बनाना और सबकी संघोन्नतिके लिये यथा योग्य प्रयत्न करनेसे ग्रामकी अवस्थापर प्रभुत्व प्राप्त होता है। केवल वैयक्तिक विचार के ही दिन अब चले गये हैं, और संघ के विचार के दिन आगये हैं; इसलिये प्राप्त परिस्थिति के अनुसार हरएक को प्रतिदिन संघकी सेवा अधिकसे अधिक करने की अत्यंत आवश्यकता है। जितना संघका बल बढेगा, उतना समाज शक्तिका प्रभुत्व प्राप्त होता है। इसी प्रकार जातीय और राष्ट्रीय परिस्थितिके विषयमें समझना उचित है। अपनी जातीय और

राष्ट्रीय अवस्था सबसे श्रेष्ठ करनेका विचार हरएक मनुष्य के मन में उत्पन्न होना चाहिये, और हरएक से उचित कार्य भी उक्त दिशासे होने चाहिये।

इस रीतिसे विचार करके अपनी परिस्थितिका प्रभुत्व संपादन करना चाहिये। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, निर्लोभता, स्वच्छता, संतोष वृत्ति, तप, अध्ययन और परमात्मभक्तिसे सब परिस्थितिका प्रभुत्व संपादन किया जाता है। सारांश रूपसे यही एक नियम है, इसस वैयक्तिक और सामाजिक परिस्थितिपर अपना अधिकार रखना सुकर होता है । यही योग का प्रारंभ है। इसमे पता लग सकता है कि, योगसाधन का बाह्य परिस्थितिके साथ संबंध कितना व्यापक है। पाठक यह न समझें कि, योगसाधन का संबंध केवल एक व्यक्तिके साथ ही है। परंतु राष्ट्रकी जातीय परिस्थितिके साथ भी उसका वैसा ही दृढ संबंध है। इसीलिये योगके ग्रंथोंमें कहा है कि " धार्मिक देश " में ही योग साधन हो सकता है। इस कारण योग साधन करने वालोंको आवश्यक है कि, वे अपने देशकी परिस्थिति ऐसी उच्च बनावें, कि भविष्यमें जानेवाले जनोंको योग साधन करना अधिक सुगम हो जाय। देशमें धार्मिक वायु मंडल उत्पन्न होनेसे अन्यभी बहुत लाभ हैं। इस लिये इस दृष्टिसे पाठकोंके प्रयत्न होने आवश्यक हैं।



पद्मासन ।



पद्मासन ।

दाहिना पांव बाईं जंघापर और बांयां पांव दाहिनी जंघापर रखिये। दोनों पांव दोनों जंघाओंपर ठीक प्रकार आजांय। पश्चात् बांयां हाथ बांये घुटनेपर और दांयां हाथ दांये घुटनेपर रखिये। पीठ, कमर, गला, सिर, पृष्ठवंश सीधा समरेखामें रखिये, चाहे अपनी दृष्टि भ्रूमध्यपर अथवा नासिका के अग्रपर रखिये, किंवा किसी बाह्य बिंदुपर भी रख सकते हैं। इसको पद्मासन, किंवा कमलासन कहते हैं।

कई योंकी जंघायें इतनी मोटी होतीं हैं कि, उनके दोनों पाव दोनों जंघाओंपर किसी प्रकार भी आनहीं सकते। ऐसे लोग आरंभमें इस आसनको कर नहीं सकते। इनको उचित है कि, वे निम्न रीतिसे " अर्ध पद्मासन " ही करें और पश्चात पद्मासन करनेका यत्न करें।

एकही पांव दूसरे पांवकी जंघापर रखनेसे अर्ध पद्मासन होता है। इसमें दूसरें पांवकी एंडी गुदा और अंडकोशके बीचमें लगाना

अच्छा होता है।

पांवोंके हेरफेरसे दोनों ओर के आसन उक्त प्रकार ही बन सकते हैं। इस आसनसे पांवोंकी नस नाडियां शुद्ध होती है, और ध्यानादिके लिये एक ही आसनपर अधिक देरतक बैठना सुगम होता है। पद्मासन में बैठकर पेट को पसलियोंमें ऊपर खींचनेसे और कुछ देर वहां ऊपर ही रखनेसे पचन शक्ति बढ जाती है और पेट के दोष दूर होते हैं। इसप्रकार पांच मिनिट तक करनेसे भूख अच्छी लग जाती है और पेट का आम वायु दूर होता है। पद्मासनमें बैठकर कंठ मूलमें ठोढी लगानेसे और पृष्ठवंश सीधा रखनेसे मस्तिष्क का मज्जा प्रवाह ठीक होनेमें सहायता होती है, इसी कारण इसमे विचार शक्ति बढ जाती है।

कई लोग इस पद्मासनको करनेके समय हाथ बीचमें भी रखते हैं, और कई अपनी छातीके साथ भी रखते हैं। कई तीसरे अपने हाथोंको ऊपर करके सिरके सीधे ऊपर लेजाकर ऊपर एक दूसरेसे मिलाकर हाथ जोड कर नमस्कार करते और वैसे ही हाथ वहां ही रखते हैं;ऐसा करने से पेट और छातीके स्नायु ओं में अच्छी प्रकार ऊपरका खिंचाव आता है और उक्त स्नायुओंका लाभ होता है।

समवृत्ति प्राणायाम।

प्राणायामके विघ्नोंको दूर करनेका सुगम उपाय।

आज कल नाना प्रकार के दुष्ट व्यसनोंके कारण लोगोंके शरीर ऐसे अशक्त और कमजोर हुए हैं कि, वे कुंभक के साथ थोडेसे भी प्राणायाम कर नहीं सकते !! कुंभक प्राणायाम करनेसे कई लोग नाना प्रकारकी शिकायतें करते रहते हैं, वास्तवमें इसका दोष प्राणायाम के साथ बिलकुल नहीं है; परंतु उनके दुर्व्यसनों के साथ अथवा उनके माता पिता ओंके दुर्व्यसनाधीनता के साथ संबंध रखता है। दस पंद्रह वर्षोंके सूक्ष्म निरीक्षणसे जो बातें अनुभव में आचुकी हैं, उनका सारांश रूपसे वर्णन यहां करता हूं, जिससे प्राणायाम करनेवाले अपनी पूर्ण तैयारी करके ही प्राणायाम का अभ्यास कर सकेंगे।

जो स्वयं जन्मसे मांसाहारी हैं

और विशेषतः जिनके बापदादा भी मांसाहारी–अर्थात् अधिक मांसाहारी रहे हैं, उनको कुंभक प्राणायाम से विविध प्रकारके कष्ट होते हैं। छातीमें, पसलियोंमें दर्द होता है, पेटकी गडबड उत्पन्न होती है, सिरमें कई दोष होने का ख्याल हो जाता है। विशेषतः श्वास-दमा–आदि का प्रकोप होता है। इसका कारण इतना ही है कि, मांसाहारी कुलमें जन्म होनेके कारण अथवा अपने शरीरके सब परमाणु मांस-भोजन के ही होनेके कारण खून, मज्जातंतु तथा फेंफडेंमें विशेषतः और सब शरीरमें साधारणतः प्राणशक्तिको धारण करनेका बल ही नहीं रहता है। प्राणशक्ति का बल सबसे अधिक है, इस लिये जब उसको स्वाधीन करनेका यत्न किया जाता है, वह शक्ति क्रोधित होकर प्रतिबंधको तोडना चाहती है। प्राण स्वयं "वीरभद्र" होनेसे उसके सामने अन्य शक्तियां कमजोर ही होतीं हैं। मांसभोजी लोग मसाले आदि उत्तेजक पदार्थ बहुत खाते हैं, इसलिये उनके शरीरके परमाणुओंमें प्राण धारक शक्ति कम ही होती है। मांसके साथ मद्यसेवन करनेवालों में, और जिनमें आनुवंशिक मद्यपान शुरू है, उनमें तो बहुत ही, प्राणधारक शक्ति अत्यंत हीन अवस्थामें रहती है। ऐसे लोग जिस समय अपने प्राणरूपी "वीरभद्र" को रोकना चाहते हैं, उस समय वह उनको ही ताडन करता है और जो शरीरका भाग अत्यंत कमजोर होता है, उसीमें बिगाड होने लगता है। इसलिये ऐसे लोगोंको प्रारंभमें उत्तम पथ्य करना चाहिये और पश्चात् प्राणायाम शुरू करना चाहिये।

मांस भोजनसे यद्यपि शरीर बडा पुष्ट होता है तथापि सौमें ३६ ऐसी बीमारियोंकी स्वभावतः संभावना उनके शरीरमें रहती है, कि जो रोग कदापि फल भोजियों को होते ही नहीं। इसलिये दौडना, तैरना अथवा दीर्घ काल तक कोई कार्य करना, जिसमें कि प्राणशक्तिकी स्थिरताकी आवश्यकता रहती है, ऐसे कार्योंमें मांस भोजी लोग फलभोजियोंके पीछे हमेशा रहते हैं। यही कारण है कि, इनसे कुंभक नहीं होता और बलसे किया जाय तो हानि करता है। मद्यपियोंके लिये तो यह भय अत्यंत अधिक है।

भंग, गांजा, अफीम, चरस आदि भयंकर व्यसन करनेवालोंके

लिये तो कुंभक प्रायः अशक्य ही है। तमाखू खाने पीने वालोंके शरीरमें रक्त दोष बहुत होता है, तथा तमाखुके व्यसन जन्मभर करनेवालों की संततिमें खूनकी बिमारी, मज्जातंतुओंकी कमजोरी और हृदयकी निर्बलता जन्मसे ही रहती है। इस कारण इन लोगोंसे कुंभक प्राणायाम करना कठिन हो जाता है, तथा बलपूर्वक करने से हृदयकी कमजोरी बढ जानेकी संभावना होती है। न्यूनाधिक व्यसनके कारण न्यूनाधिक परिणाम होता है इसका विचार पाठक भी कर सकते हैं। अर्थात् यदि मातापिता बहुत बलवान हुए, तो उनपर व्यसनों का बुरा परिणाम उतना नहीं होता है, जितना कि कमजोर मनुष्योंपर होता है; इसलिये संतानों में भी उसी प्रमाणसे दोष उतरते हैं। तमाखु के व्यसनमें विशेष यह बात है; कि, इसके सेवन करने वाले पर थोडासा बुरा परिणाम होता ही है, परंतु उसके वीर्य में बहुत ही दोष उत्पन्न होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि, उनकी संततिमें जन्मसे वीर्य दोष और हृदयकी कमजोरी रहती है तथा खूनकी खराबी और मज्जातंतुओं- की शिथिलता जन्मसे ही रहती है। इस लिये तमाखू आदि व्यसन किसी गृहस्थीको करने नहीं चाहिये। परंतु आजकल सिगरेट आदि पीना बडा सभ्यताका द्योतक समझा जाता है, और बडे बडे अखबारोंमें तमाखूके विज्ञापन भी कम नहीं होते हैं। इस दुष्ट सभ्यता के साथ "वैदिक धर्म" को अवश्य युद्ध करना चाहिये, और निर्व्यसनता की सर्वत्र स्थापना करनी चाहिये।

इससे और सभ्य व्यसन हैं, जो चाय काफी आदि रूपमें हमारे चूले तक घुस गये हैं!!! ये व्यसन मज्जातंतु ओंको ऐसा बिगाडते हैं कि उस से बचनेका उपाय आगे की आयुमें कोई भी नहीं होता है। चाय काफी पीने वाले माता पिताओंके बाल बच्चोंमें जन्म से मज्जातंतु ओंकी निर्बलता रहती है और उसमें अधिक दोष इस कारण उत्पन्न होता है कि, जब स्वयं पीने हुए माता पिता अपने छोटे छोटे बालबच्चों को भी चा कापी पिलाते हैं। कई पुत्रद्रोही पिता हमने ऐसे देखे हैं कि, जो स्वयं बिडी पीकर अपने चारपांच वर्षके लडके को पीने देते हैं!!! इसी प्रकार चा काफी भी पिलाते हैं।

हैं !! बचपन से जो बच्चे चाय काफी पीते हैं, उनको आगे दूध भी हाजम नहीं होता, और अंतमें पेट का बिगाड निःसंदेह होजाता है। ये सब व्यसन "सभ्यता" के नामसे अपने देशमें फैले हैं !!! जिन लोगोंमें विचार का कार्य कम किया जाता है, उन जातियोंमें इन व्यसनोंका बुरा परिणाम कम दिखाई देता है; परंतु जिन लोगोंके पीछे पढने पढानेका काम बडा होता है, अर्थात् जो दिमागी कार्य बहुत करते हैं, उनमें तथा उनकी संततिमें इन दुष्ट व्यसनोंके परिणाम भयानक रीतिसे दिखाई देते हैं। नाश कम हो वा अधिक हो इन व्यसनोंसे नाश निःसंदेह होता है; इस लिये सुविचारी धार्मिकोंको इन व्यसनोंसे बहुत दूर रहना चाहिये।

"हुक्का पानी" शुरू करना या बंद करना जिन लोगोंमें समाजके साथ संबंध रखता है, उन जातियोंकी हीन अवस्थाका वर्णन नहीं हो सकता। इस लिये सब पाठकोंसे प्रार्थना है कि, वे उक्त व्यसनोंसे अपने आपको तथा अपने इष्टमित्रों, अपने परिवारके लोगों ओर अपनी जातिके लोगोंको दूर रखनेका यत्न करें।

जो लोग ऐसी हीन परिस्थितिमें जन्मे हैं, उनको कुंभक प्राणायाम के पूर्व पथ्य करना चाहिये और पश्चात् अभ्यास का प्रारंभ करना उचित है। पथ्य यह है, (१) मांसभोजन छोडदेना, (२) मसाले कम करते करते बिलकुल न्यून करने और अंतमें छोडना अथवा अतिन्यून उपयोग करना, (३) खटाई, मिर्च आदि पदार्थ कम खाना, (४) वीर्यदोष हुआ हो तो, उसका उपाय-जो "ब्रह्मचर्य" पुस्तक में लिखा है-करना और उस दोषसे निवृत्त होना, (५) सात्विक भोजन करना, फलोंका सेवन अधिक करना, (६) विशेषतः गायका दूध पीना," असंभव हुआ तो बकरी का पीना, ये दूध बिलकुल न मिलनेकी अवस्थामें भैंसका पीया जा सकता है।"गायके दूधमें प्राण धारक शक्ति सबसे अधिक होती है।" प्राणायाम करनेवालोंको गायका दूध अवश्य पीना चाहिये, आजकल गौवें कम होती जाती है। यह एक धार्मिक आपत्ति है, इस लिये गोरक्षण और गो—वर्धन का प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। गोदुग्धके अभावमें भैंस का दूध लेना पडेगा। अन्य रहने सहनेमें सात्विक भाव

अधिक लाना चाहिये। इस प्रकार शरीरदोष की न्यूनाधिकताके अनुसार एक वर्षसे तीन वर्ष तक पथ्य करना चाहिये। जिनके शरीर बहुत दोषोंसे युक्त हों उनको कदाचित् अधिक भी करना पडे। इस प्रकार देहशुद्धिका उपाय करते करते निम्नलिखित "समवृत्ति प्राणायाम" का अभ्यास करनेसे बडा लाभ होता है।

"समवृत्ति प्राणायाम" वह होता है कि जिसमें आंतरिक और बाह्य कुंभक नहीं होता। समगति से तथा मंद वेगसे श्वास और उच्छ्वास चलते रहते हैं। पहिले आप श्वासकी गति मंद कीजिये और पश्चात् श्वासको जितना समय लगना लगता है, उतना ही उच्छ्वासको लगाइये। श्वासोछ्वासकी गति आप अंकोंकी गिनतीसे नाप सकते हैं, अथवा ॐ कार के जपसे अथवा किसी अन्य मंत्रके जपसे नाप सकते हैं। यदि आपका श्वास आठ अंकोंसे अंदर जाता है, तो आठ ही अंकोंसे उसको बाहिर छोडिये। फिर उतने ही अंकोंसे अंदर लेकर उतने ही समयसे बाहिर छोडिये। किसी प्रकार प्राणशक्तिपर बलका दबाव न डालते हुए जितना आसानीसे हो सकता है उतना ही करते जाइये। इस प्रकार दो सप्ताह करने के पश्चात् एक अंककी संख्या बढाइये। फिर प्रति पंद्रह दिन के पश्चात् एक अंककी संख्या बढाइये। बीसकी संख्या होने तक श्वास और उतनेही समयका उछ्वास होने तक ही कीजिये। कईयोंके मतसे २४ की संख्या तक भी बढाया जासकता है। बढाया तो इससे भी अधिक जा सकता है, परंतु यह सब प्रत्येक प्रकृतिके अनुसारही बढाना योग्य होता है। इसलिये हमारा ख्याल यह है कि जिनका विचार हम इस लेखमें कर रहे हैं, उनके शरीर के बलके अनुसार बीस अथवा चोवीस की संख्यातक बढाना पर्याप्त है।

श्वास तथा उछ्वास इतनी मंदगतिसे हो कि उसका बिलकुल आवाज न हो, श्वासोछ्वासका आवाज न तो दूसरेको सुनाई दे और न अपने आपको सुनाइ देवे। नहीं तो कईयोंके श्वासका आवाज बडा दूर तक सुनाई देता है, ऐसा श्वास लेना ठीक नहीं है। शब्द रहित श्वास और उछ्वास चलने चाहिये और नियत गतिसे होने चाहिये।

उछ्वास छोडनेके समय पूरा छोडना चाहिये, अर्थात् फेंफडोंको

निःशेष खाली करना चाहिये । तथा श्वास लेनेके समय भी फेंफडोंके निचला भाग जो पेटके पास होता है, उसमें श्वास पहिले पहुंचे और पश्चात् क्रमशः ऊपर के भागोंमें श्वास भरना चाहिये । और श्वास भरनेके समय अथवा उच्छ्वास छोडनेके समय किसी प्रकारका धक्का लगना नहीं चाहिये । भरना भी ऐसा चाहिये और खोलना भी ऐसा चाहिये कि जो समझमें भी न आवे ।

दमा और श्वास के रोगी, तथा जिन के फेंफडे बडे कमजोर होते हैं, यदि अपनी शक्तिके अनुसार इस प्राणायामको गर्मी के दिनोंमें शुरू करेंगे, तो उनके दोष दूर हो सकते हैं । किसी प्रकार की बीमार अवस्थामें इस प्राणायाम को करना हो, तो गर्म हवा का स्थान पसंद करना योग्य है । जिस हवामें आर्द्र सर्दी है उस हवामें बैठकर करना अच्छा नहीं है । वायु शुद्ध हो परंतु गीला और सर्द न हो । इस लेखके प्रारंभमें जिनका वर्णन किया है, उन लोगोंमें प्राणका बल बढानेके लिये यह " समवृत्ति प्राणायाम " बडा उपयोगी है । बीमार अवस्थामें इसको शक्तिसे कम करना योग्य है, योग्य शक्ति आनेपर बढाया जा सकता है । आशा है कि इस विधिके अनुसार करके साधारण लोग इससे लाभ उठायेंगे ।

वैदिक-वर्ण-विभाग ।

(लेखक- श्री० रामचरण विद्यार्थी ।)

प्राचीन तथा आधुनिक सम्पूर्ण संसार के समस्त विज्ञान वेत्ताओं और विद्वानों ने वेदों को संसार के साहित्य में सबसे प्राचीन पुस्तक माना है । आर्यावर्तीय ऋषि महर्षिजन वेदों को ईश्वरीय वाक्य समझ कर उनको स्वतः प्रमाण मानते हैं । वेदेतर समस्त पुस्तकें उनको परतः प्रमाण हैं । वेद विरुद्ध किसी विषय की प्रामाणिकता ऋषियोंने स्वीकार नहीं की । वेद इस विषय में अपने स्वयं साक्षी हैं । वेद वा ज्ञान नित्य है । न तो वह नष्ट होता है और न पुराना । उसको जान कर मनुष्य अमर हो जाता है, उससे भिन्न कोई मार्ग भी विवेकी-जनोंके लिए श्रेयस्कर नहीं है । अतः सब मनुष्यों को चाहिए कि ईश्वर के काव्य रूप वेदों को देखें, वेदों का स्वयं पढकर उनका मनुष्य मात्र में प्रचार करें । सब एक ही पिता के अमृत पुत्र हैं अतः सब मनुष्य परस्पर

प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य वर्ते।

जिस समय संसार में वेदों का प्रचार होगा, संसार आनन्द का आकर और शान्ति का सागर बन जायगा। विवेकी जन जिस आदर्श संसार का सम्प्रति स्वप्न देखा करते हैं, वेदों में उस आदर्श को प्राप्त करने की क्रियात्मक विधि का वर्णन है। सांसारिकाभ्युदय और निश्रेयससिद्धि को उपलब्ध करने का सन्मार्ग जैसा वेद ने दर्शाया है, संसार का अन्य कोई धर्म पुस्तक उसकी समानता नहीं कर सकता। वैयक्तिक और सामाजिकोन्नति के विषय में यदि वैदिक मन्तव्य का अन्वेषण किया जाय, तो उत्तर सारूपेण दो शब्दों में प्राप्त होता है।

(१) वर्ण।

(२) आश्रम।

वैदिक सभ्यता का सर्वोत्तमरत्न वर्णाश्रम धर्म है। वर्णाश्रम धर्म सामाजिक तथा वैयक्तिक समविकास और सामञ्जस्य की सुन्दर शिक्षा प्रदान करता है। वर्ण विभाग का सबन्ध मुख्यतया सामाजिक अभ्युत्थान से है तथा आश्रम व्यवस्थाका सम्बन्ध वैयक्तिक उन्नति से है। संसार के सामाजिक इतिहास का अनुभव वैदिक सभ्यता के इस वर्ण विभाग विषयक पक्ष का प्रबल पोषक है। आश्रम धर्म की ओर संसार का ध्यान अभी तक आकर्षित नहीं हुआ और न संसार ने अभी तक इस के रहस्य को ही जान पाया है।

सामाजिक शास्त्र के इतिहास में सामाजिक अभ्युत्थान में हम को दो नियम मुख्यतया कार्य करते दिखाई देते हैं।

(१) श्रम विभाग।

(२) अन्योन्याश्रय।

श्रम विभाग और अन्योन्याश्रय—यह दो नियम समाज शास्त्र के इतिहास में समाजोन्नति के मूल मन्त्र दिखाई देते हैं। समाज का कार्य सुरूपेण सञ्चालित करने के लिए, वेदों के स्वाध्याय से प्रकट होता है, कि वेदों ने श्रम विभाग का आदेश दिया है। यजुर्वेद का तीसवाँ अध्याय इसी श्रम विभाग के वर्णन से परिपूर्ण है। इस अध्याय के अनुसार कार्य सञ्चालनार्थ समाज का सौ से अधिक भागों में विभाग किया गया है। वेदों ने इस अध्याय के अनुसार मनुष्य समाज के सौ से अधिक वर्ण और उन वर्णों के गुण कर्मादि गिनाये हैं।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू
राजन्यः कृतः॥ ऊरू तदस्य
यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।
ऋग्वेद १०।९०।१२ यजु० ३१।११
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत्। मध्यं तदस्य यद्वैश्यः
पद्भ्यां शूद्रोऽजायत॥अथर्व० १८।६।६

इन मन्त्रोंसे यह भाव प्रकट हो सकता है कि इन सौ से अधिक वर्णों के विभागों को चार प्रकार के विभागोंके अन्तर्गत विभक्त कर सकते हैं। व्यापक रूप से सौ से अधिक मनुष्य जाति के वर्ण अपनी अपनी

योग्यता के अनुसार चार विभागों में विभक्त हो सकते हैं। एक बात इस चतुर्विभाग के विषय में स्मरणीय यह है कि इस इन चारों विभागों की उन्नति, हित, तेज और प्रियता के लिए वेदों में अनेक स्थलों पर प्रार्थना की गई है। इन चारों विभागों को समानाधिकार दिए गये हैं।

विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्। शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन। ऋ० १।५१।८

इस में मनुष्य समाज को दो विभागों में विभक्त किया गया है। इस मनुष्य समाज के दो विभागों के विषय में एक बात यह स्मरण रखने योग्य है कि उक्त दो विभाग करते समय एक विभाग के मङ्गल और इष्ट की वेदों के अनेक स्थलों में प्रार्थना है, परन्तु द्वितीय विभाग के अमंगल, नाश, और अनिष्ट की प्रार्थना है। द्वितीय विभाग के दमन करने, दण्ड देने और जाति-च्युत करने की प्रार्थना है। समाज के इन विभागों का नाम आर्य तथा दस्यु और चार विभागों का नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र है।

आर्य तथा दस्यु--दो विभागों में आर्य का मङ्गल और दस्यु का अमङ्गल करना वेदादेश है। आर्यों के मङ्गल और दस्युओं के अमङ्गल के विषय में कुछ मन्त्र यहां दिये जाते हैं।

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम्। हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत्॥ ऋ. ३।३४।९

यद् वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा। अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय। ऋ. १।११७।२१॥

त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय। अस्ति स्विन्नु वीर्यं तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः। ऋ० ६।१८।३

यहां पर आर्यों के लिए "ज्योतिश्चक्रथुः" और "आर्य वर्ण प्रावत्" आदि शब्द आये हैं, जिनसे प्रकट होता होता है कि आर्यों के लिए प्रकाश और रक्षा का विधान वेदों में आया है। उपरि लिखित वेद मंत्रों में ही "हत्वी दस्यून्," "दस्युं बकुरेणा धमन्तः" "अदमायो दस्यून्" आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं जिनसे प्रकट होता है कि दस्यु का हनन करने, अग्निदत्त अस्त्र से भस्म करने तथा दमन करने की वेदों में आज्ञा दी है। आर्य, दस्यु के इस सम्बन्ध को अधिक व्यक्त करने के लिए कुछ वेद मंत्र और लिखे जाते हैं।

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र। धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः॥ ऋ० १।३३।४॥

त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे। अवादहो दिव

आ दस्यूमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ऋग्वेद १ । ३३ । ७ ॥

त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत । त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥

ऋग्वेद १ । ५१ । ५

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथा-रन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् । महा-न्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादे-व दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥ ऋ. १।५१।६

उपरि लिखित तथा अन्य वेद मन्त्रों में दस्यु को दमन करने की स्पष्ट आज्ञा विद्यमान है । आर्यों की रक्षा चाहने वाले वेद मन्त्रों को पूर्व देख चुके हैं । आर्य तथा दस्यु से किन पुरुषों का ग्रहण करना चाहिए । इसके लिए उपरि लिखित वेद मन्त्रों में प्रयुक्त हुए दस्यु तथा आर्य शब्द के विशेषण और दस्यु तथा आर्य शब्द के यौगिक अर्थ यदि देखे जांय तो दुष्ट पुरुषों का नाम दस्यु तथा श्रेष्ठ पुरुषों का नाम आर्य है । वेद का ज्ञान नित्य और सार्वभौमिक है, अतः यह सिद्ध है कि आर्य तथा दस्यु सब संसार में, मनुष्य अच्छे या बुरे होने के कारण कहाते हैं । दस्यु के विशेषण और पर्याय वाची अयज्वान, अव्रत, दासादि शब्दों का वेदों में अनेक स्थलों पर प्रयोग आया है । उक्त प्रयोगों से स्पष्ट है कि दस्यु अपराधी को कहते हैं ।

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम् । अपघ्नन्तो अराव्णः ॥

ऋ. ९ । ६३ । ५

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रु-तूर्याय बृहतीममृध्राम् । यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्सुतुका नाहुषाणि ॥

ऋ. ६। २२ ।१०

इन मंत्रों में संसार व दुष्ट अपराधी पुरुषों को आर्य बनाने की प्रेरणा की है । इस से यह अभिप्राय व्यक्त होता है कि मनुष्य जाति में आर्य तथा दस्यु- दो प्रकार के अच्छे और बुरे मनुष्य होते हैं । दस्यु को दण्ड देकर, समाज से बाहर निकाल कर वा अन्य विधियों से आर्य बनाना चाहिए । समाज के अन्दर दस्यु न रहने पावें-यह यत्न करना चाहिए । दस्यु अर्थात् दास, अव्रती आदि पुरुषों की विद्यमानता में समाज की उन्नति होनी असम्भव है । समाज में तो सब आर्य ही होने चाहिए । जिस समाज में दस्यु होंगे उसकी अवश्य अवनति होगी ।

समाज की उन्नति के लिए चार प्रकार की योग्यता से पूर्ण पुरुषों की आवश्यकता है । इसी लिए वेद में इन चार विभागों के मंगल और अभ्युत्थान की समान रूपसे प्रार्थना है ।

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम् ॥

यजुर्वेद ३० । ५ ॥

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु

नस्क्राधि । रुचं विश्येषु शूद्रेषु
मयि धेहि रुचा रुचम् ॥
यजु. २० । १७

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां
यदिन्द्रिये । यच्छूद्रे यदर्ये यदे-
नश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि
तस्यावयजनमसि ॥ य. २०।१९

प्रियं मां दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां
शूद्राय चार्याय च । यस्मै च
कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते॥
अ. १९ ।३२ ।८

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु
मा कृणु । प्रियं सर्वस्य पश्यत
उत शूद्र उतार्ये ॥अ. १९ । ६२ । १

आदि मन्त्रोंमें चारों विभागों को प्रीति पूर्वक वर्तने का सदुपदेश है । चारों प्रकार के जन समुदायों की मंगल कामना, तेज वृद्धि आदि के लिए प्रार्थना और उपदेश है । किसी का अमङ्गल नहीं चाहा और न किसी को दुष्ट अथवा अव्रती ही कहा गया है । इतना ही नहीं, वरन् सब को समानाधिकार प्रदान किया गया है । इस समानाधिकार और सममंगलकामना के आधार पर कहा जा सकता है कि इस चतुर्विभाग के अन्तर्गत दास, दस्यु तथा अव्रती आदि अपराधी मनुष्यों की गणना नहीं है ! हां, मङ्गल कामना के आधार पर यह स्पष्ट है कि यह चतुर्विभाग आर्यों के अन्तर्गत है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वा शूद्र योग्यता सम्पन्न कोई भी अनार्य नहीं, क्यों कि यदि कोई भी अनार्य होता तो उसके दण्ड और दमनादि का विधान वेदों में होता । ऐसा विधान कहीं नहीं प्रत्युत चारों की उन्नति और रक्षाका विधान विद्यमान है । संसार के सब पुरुष परमात्मा के अमृत पुत्र हैं ।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोक
एतु पथ्येव सूरेः । शृण्वन्तु
विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि
दिव्यानि तस्थुः ।
ऋ० १० । १३ । १

उनमें से जो दुष्ट हो जाय उनको आर्य बनाना चाहिए । आर्यों के भिन्न व्यक्तियों को चाहिए कि समाज के धारणार्थ चार योग्यता ओं में से किसी एक योग्यता को धारण करें जिससे वह समाज की चार आवश्यकता ओं में से एक आवश्यकता की पूर्ण प्रकार से पूर्ति कर सकें । चारों योग्यता ओं में कुशल होकर पूर्ण पुरुष होना तो कठिन है अतः किसी एक अंश में ही विशेष योग्यता प्राप्त करनी उचित है। वह चार योग्यता यें (ब्रह्मणे) ज्ञान (क्षत्राय) शौर्य वीर्य और रक्षण (मरुद्भ्यः) दूकानदारी आदि और (तपसे) अधिक शारीरिक परिश्रम, शिल्प है । मनुष्य को योग्य कि उक्त चारों में से किसी एक में विशेष योग्यता प्राप्त करे ।

उपरि लिखित प्रमाणों के आधार पर हम मनुष्य जाति का निम्न लिखित रीति से विभाग कर सकते हैं

मनुष्य समाज।

(विश्वे अमृतस्य पुत्राः। यजु. ११।५)

आर्य, व्रती, यज्वानः
(प्रावत् = रक्षाके लिये। ऋग्वेद१।१३०।८)

दस्यु, अनार्य, अव्रती
(हत्याय = दण्डके लिये। ऋग्वेद१।५१।६)

ब्राह्मण — क्षत्रिय — वैश्य — शूद्र

आर्यों के चतुर्विभाग की एकता, समानता और आवश्यकता को व्यक्त करने के लिए वेद में इसका अति सुन्दर प्रश्नोत्तर रूपेण आलङ्कारिक वर्णन आया है। आलङ्कारिक रूपसे आर्यों के इस पद विभाग को व्यक्त करने के लिऐ वेदों में एक प्रश्न आता है जिसमे इस समस्या की पूर्ति के-लिए प्रश्न उठाया गया है कि समाज में मुख के समान कार्य करने की योग्यता रखने वाले को क्या समझना उचित है? बाहू, ऊरू (मध्यभाग) और पादों के समान कार्य करने की योग्यता से सम्पन्न पुरुष को क्या समझना चाहिए। जिस प्रकार मनुष्यशरीर में शिर, बाहू, मध्यभाग और पाद मिलकर शरीर का सम्पूर्ण कार्य करते हैं, इसी प्रकार समाजरूपी शरीर में शिर, बाहू आदि के कार्य करने वाले को क्या समझना चाहिए और उसको किस योग्यता से सम्पन्न होना चाहिए॥ शरीर की नाई समाज इन चारों विभागों की विद्यमानता में पूर्ण कहावेगा।

गर्दन से ऊपर के भाग का नाम यहां इस आलंकारिक वर्णन में मुख शब्द से प्रकट किया है। मुख शब्द से यहां शिर का अभिप्राय है। इस शिर में नेत्र, कान, घ्राणादि इन्द्रियाँ निवास करती हैं। मनुष्य इन्हीं इन्द्रियों के द्वारा श्रवण, मनन, निदिध्यासन विवेकादि सब कुछ इसी से करता है। मनुष्य समाज रूपी शरीर में इस प्रकार कार्य करने वाले को क्या समझना चाहिए?

मुख भला बुरा सब कुछ निर्णय करके शरीर के शेष अंगों की सहायता से

स्वकार्य को पूर्ण करता है । हाथ समस्त शरीर की रक्षा करते हैं । अतः बाहुवत् समस्तसमाज रूपी शरीर की रक्षा करने की योग्यता रखने वाले पुरुष को क्या समझना चाहिए ?

ऊरू से उक्त आलङ्कारिक वर्णन में शरीर के मध्यभाग का ग्रहण किया गया है । गर्दन से नीचे और जंघा के ऊपरि भाग को मध्यभाग कहते हैं । शरीरस्थ इस भाग का यह कार्य होता है कि इस भाग में प्रत्येक भुक्त पीतादि वस्तु मज्जित होकर पुनः वहां से सुन्दर पुष्ट रस बन कर मस्तिष्क से पाद पर्यन्त समस्त अङ्ग प्रत्यङ्ग को पुष्ट करती है । मनुष्य समाज रूपी शरीर का इस प्रकार पालन पोषण यदि कोई करें, तो उनको समाज में क्या समझना चाहिए ?

पैर के बिना शरीर कुछ भी नहीं कर सकता । सर्वत्र आना जाना पैर के बल पर ही होता है । समस्त शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग का आश्रय पैर ही है । यदि पैर न हो तो मनुष्य पंगु हो जाय । इस समाज धारणार्थ समाज रूपी शरीर में पैर का काम करने वाले व्यक्तियों को क्या समझना चाहिये ?

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्यते ॥

यजु० ३१।१०, ,ऋग्वेद १०।९०।११ अथर्व० १८ । ६ । ५ ॥

(यत्) जब (पुरुषं) पुरुष परमात्मा को (वि+अदधुः) विविधप्रकार से धारण किया, (कतिधा) कितने प्रकार से (वि+अकल्पयन्) विशेष करके कल्पना की । (अस्य) इसका (मुखम्+किम+आसीत्) मुख कौन है ? —वेद में लिट् लङ् और लुङ् सारे काल होते हैं । " छन्दसि लुङ् लिङ् लिटः ॥ ३ । ३ । ६ । धात्वर्थानां सम्बन्धे सर्वकालेष्वेते वा स्युः । (किम्+बाहू, किम्+ऊरू, पादौ+उच्येते) दोनों बाहु कौन है, दोनों ऊरू कौन है और इसके दो पैर कौन है ?

यह चार प्रश्न हैं जिन का उत्तर अगले वेद मन्त्र में दिया गया है ।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥

ऋ. १०।९१।२ य. ।।३१।११

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत् । मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।अथ.१९।६।६

(अस्य+मुखं+ब्राह्मणः+आसीत्) इसका मुख ब्राह्मण है ।(बाहू+राजन्यः+कृतः) दोनों बाहू क्षत्रिय है । (यद्+वैश्यः, तद्+ऊरू) जो वैश्य है वही ऊरू अर्थात् मध्यभाग है । (पद्भ्याम्+शूद्रः+अजायत) दोनों पैर शूद्र हैं।

"पद्भ्यां शूद्रोऽजायत" का शब्दार्थ "पैरों से शूद्र पैदा हुए" होता है । वह शब्दार्थ युक्तियुक्त और बुद्धिपूर्वक न होने से ग्राह्य नहीं । अतः इसका पूर्वापर सम्बन्ध के अनुसार भाव ही ग्रहण करना चाहिए ।

यदि 'पद्भ्याम्' पद में आई पञ्चमी

विभक्ति का निमित्त अर्थ किया जाय तब भी सब शंका दूर हो जाती है। तब इसका अर्थ 'पैर के कार्य के निमित्त' होगा। इसी प्रकार का अर्थ "चन्द्रमा मनसो जातः" आदि वाक्यों का "मनो विनोद के लिए चन्द्रमा" अर्थ किया जाता है॥

उपरि लिखित वेद मन्त्रोंसे स्पष्ट प्रकट होता है कि उक्त चारों विभागों का क्या अभिप्राय है? जिस प्रकार शरीर का संरक्षण इन चार प्रकार की योग्यता धारण करने वाले अङ्गों से होता है। इसी प्रकार समाज का संरक्षण भी ज्ञान, रक्षा, व्यापार, शिल्पादि विद्याओं में कुशल पुरुषों के द्वारा होता है।

शरीर के उक्त अलङ्कार से एक भाव यह भी व्यक्त होता है कि जिस प्रकार शरीर के चारों भाग अन्योन्याश्रित हैं, इसी प्रकार समाज में भिन्न भिन्न योग्यता रखने वाले पुरुषों के विषय में समझना उचित है। यही भाव समाज शास्त्र में कार्य करने वाले श्रमविभाग और अन्योन्याश्रय–इन दो नियमों से विदित होता है। जङ्गली और असभ्य जातियों में प्रायः यह देखा जाता है कि प्रत्येक पुरुष अपने सब काम कर लेता है और किसी एक कार्यमें उसे कुछभी विशेषत्व प्राप्त नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि समाज के अङ्ग प्रत्यङ्ग सब पृथक् पृथक् होते हैं। किसी प्रकार का सङ्गठन नहीं होता। परस्पर युद्ध होता रहता है। सभ्य समाज में सङ्गठन होता है और इसके प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे पर आश्रित होते हैं। सब में प्रेम होता है और कोई युद्धादि नहीं हो पाता। एक दूसरेपर आश्रित होने के कारण एक वर्ग दूसरे वर्ग को घृणा दृष्टिसे नहीं देखता और न छोटा बड़ा समझा जाता है।

अतः वेद मन्त्रों से यह स्पष्ट है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन सब प्रकार की योग्यता धारण करने वाले पुरुषों को समानाधिकार है। वे अपनी अपनी योग्यता के अनुसार कार्य कर सकते है। कोई भी पुरुष चारों योग्यताओं मे से किसी एक योग्यता का धारण करने वाला अपनी उस योग्यता के कारण घृणित, मूर्ख या पतित नहीं। ब्रह्मविद्याध्ययन के कारण ब्राह्मण रक्षादि की योग्यतासे सम्पन्न होने के कारण क्षत्रिय, व्यापारादि की योग्यता धारण करने के कारण वैश्य तथा कठिनतर शारीरिक परिश्रम और कारीगरी आदि की योग्यता धारण करने के कारण शूद्र आदि समझना चाहिए। आर्यों के यह विभाग है और भिन्न भिन्न योग्यता के धारण करने वालों को भिन्न भिन्न योग्यतासे सम्पन्न ब्राह्मणादि समझ सकते हैं। यह विभाग संसार व्यापी है। सारे सभ्य तथा उन्नत समाजों में स्थित भिन्न भिन्न व्यवसायी पुरुषोंको इन चार विभाग में विभक्त कर सकते है और भिन्न भिन्न योग्यता के अनुसार उनको ब्राह्मणादि पुकार सकते है। यही भाव वेद के उस प्रसिद्ध मन्त्रसे प्रकट होता है, जोकि यजुर्वेद अ० ३० में ५ वां मन्त्र है।

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम् ॥

यजुर्वेद ३० । ५ ।

(ब्रह्मणे ब्राह्मणम्) ब्रह्मज्ञान के लिए ब्राह्मण, (क्षत्राय राजन्यं) शौर्य वीर्य के लिए क्षत्रिय, (मरुद्भ्यः वैश्यम्) मनुष्योंके लिए वैश्य, (तपसे शूद्रम्) कष्टके कठिन कर्मों के लिए शूद्र। इस प्रकार से यह विभाग सार्वभौमिक है ।

जो पुरुष वैदिक कर्तव्य और समाज शास्त्र के नियमों का उल्लंघन करते हैं अर्थात अनाचारी, अन्य का पदार्थ छीनने वाले, यज्ञादि शुभ कर्मों से विहीन और अज्ञानी आदि दुष्ट पुरुष हैं, उन अनार्य पुरुषों को वेदों में दस्यु, दास, अव्रत, अयज्वान, अनासुवादि नामों से पुकारा गया है और उन को सुधारकर आर्य बनाने की प्रेरणा की गई है । इसी प्रकार चारों वेदों में अनेक मन्त्र हैं परन्तु कुछेक वेद मन्त्रों के स्वाध्याय से वेदों का भाव व्यक्त हो सकता है । (क्रमशः)

तूष्णीं शंस सूक्त ।

(लेखक .-श्री. पं. परमानन्दजी उपदेशक)

ब्राह्मणस्य मंत्रव्याख्यानरूपत्वात् मंत्रा एवादौ समाम्नाताः ।

(तैत्तिरीय संहिता सायणभाष्य भूमिका)

ब्राह्मण मंत्रों के व्याख्यानरूप हैं अतः मंत्रों का ही पहले उपदेश हुआ था, वेदका व्याख्यान होने की दशा में यह वेद और ब्राह्मण दोनों के लिये गौरव युक्त नहीं प्रतीत होता, कि उनमें यज्ञ ही यज्ञ भरा हुआ हो और फिर जैसे जैसे बीभत्स शब्द इस प्रकरण में आए हैं उनको देखकर तो (यदि उनका अन्त्येष्टि, नरमेध आदि विज्ञानपरक अर्थ न लिया आए) वेद और ब्राह्मण दोनों से घृणा हो जाती है, निरुक्तकार महर्षि यास्क भी इसी सम्मतिके प्रतीत होते हैं क्यों कि वह भी नहीं किसी ब्राह्मण

ग्रन्थकी प्रतीक धरते है वहां अन्तमें ' इति ह विज्ञायते ' यह शब्द लिखते हैं, और यह आश्चर्य भी होगा यदि यजुर्वेद के अतिरिक्त (जो यज्ञ और कर्मपर होना ही चाहिये जैसा कि उसके नामसे प्रगट है) ऋग्वेद और उसका ब्राह्मण, सामवेद और अथर्ववेद अपने अपने ब्राह्मणों सहित सभी यज्ञका ही द्योतन करते हो, ' ऋच् स्तुतौ ' ऋक् शब्द स्तुतिवाचक है, ऋग्वेद और उसके ब्राह्मणों में पदार्थों की स्तुति (लक्षणा) होना चाहिये, अथर्ववेद में [अ+थर्व (अहिंसा)] वह विद्याएं होना चाहिये, जिनसे मनुष्य समाज विनाश को नहीं प्राप्त होता, उसका ब्राह्मण भी तदनुरूप होना चाहिये ! गायन और शान्ति सामवेद और उसके ब्राह्मण के आवश्यक अंग होने चाहिये ।

ब्राह्मण ग्रंथों में विज्ञान होना ही उनकी सार्थकता है ।

यद्यपि ब्राह्मण ग्रंथोंमें विज्ञान बहुत भरा पडा है तथापि उनके अप्रचार और उनकी लेखशैली की क्लिष्टता और संकेतात्मता के कारण यह कहना बडा कठिन है, कि कहां किस विज्ञान का उपदेश हैं, कुछ विज्ञानों का ब्राह्मण ग्रंथोंमें सद्भाव ऊपर दिखाया जाचुका है परंतु यह कहना वक्ता का दुःसाहस होगा, कि ब्राह्मणोंमें केवल अमुक अमुक विज्ञान है । सबसे अधिक कठिनाई इन विज्ञानों को खोजनेमें यह पेश आती है, कि पहले संकेतों का समझाना बडा कठिन होता है फिर जहां इन संकेतों को कहीं आगे जाकर खोला भी जाता है तो उसको चरितार्थ करना और उसकी संगति लगाना बडा कठिन कार्य होता है । शतपथमें तो यह कठिनाई बहुत ही अधिक है क्यों कि वहां संकेतों का ढूंढना बडा दुष्कर कार्य है ।

इतना होते हुए भी कहीं कहीं संकेत इतने स्पष्ट हैं कि इनके द्वारा अनेक विज्ञान अपने आप ही स्फुरित हो जाते हैं । आज तूष्णींशंस सूक्त के विषयमें ऐतरेय ब्राह्मण का लेख पाठकोंके आगे प्रस्तुत किया जाता है । और इस का भावार्थ जो कुछ लेखक की अल्प बुद्धि मे आया है त्यूं का त्यूं भेंट किया जाता है । यदि यह भावार्थ ठीक है तो कहना पडेगा कि यहां भी एक अतीव महत्वयुक्त विज्ञान का उपदेश है, जिसको याज्ञिक भाष्यकार अपने याज्ञिक भाष्यों के अन्दर छिपाकर ब्राह्मणग्रंथों और उनके पाठक संसारके साथ अन्याय करते हैं ।

ऐतरेय ब्राह्मण की द्वितीय पंचिका के चतुर्थ अध्यायका सातवां खड इस प्रकार आरम्भ होता है:-

देवा वै यदेव यज्ञेऽकुर्वंस्तदसुरा अकुर्वंस्त समावद्वीर्या एवासन्न्व्यावर्तन्त ततो वै देवा एतं तूष्णींशंसमपश्यंस्तमेषामसुरानानन्ववायंस्तूष्णीं सारो वा एष यत्तूष्णींशंसो देवा वै यं यमेव वज्रमसुरेभ्य उदयच्छंस्तं तमेषामसुराः प्रत्यबुध्यन्त ततो वै देवा एतं

तूष्णींशंसं वज्रमपश्यंस्तमेभ्य उद्यच्छंस्तमेषामसुरा न प्रत्यबुध्यन्त तमेभ्यः प्राहरंस्तेनैनान्प्रतिबुद्धेनाभ्रंस्ततो वै देवा अभवन् परासुरा भवत्यात्मना परास्य द्विषन् पाप्मा भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद "

अर्थः—" देवता लोग जो कुछ यज्ञ में करते हैं वही असुर करते है, समान बल होने के कारण असुर पीछे नहीं हटते फिर देवता तूष्णींशंस विधिको देखते है यहां असुर उनके पीछे नहीं चलते, तूष्णींशंस म मौन व्रत ही सार है, जिस जिस साधनरूप वज्र को देवता उठाते है उस उस को असुर लोग जान जाते हैं इसी लिये इस (तूष्णींशंस) का असुरोंपर प्रहार करते है, यह असुरोंसे जाना नहीं गया अतः इसमे उनको मार डालते हैं, फिर देवता ओं की जय होती है और असुर पराजित हो जाते हैं। जो इस तत्त्व को जानता है उसकी अपनी जय होती है और इसका द्वेषी पापी शत्रु दूर होता है "

" ते वै देवा विजितिनो मन्यमाना यज्ञमतन्वत तमेषामसुरा अभ्यायन् यज्ञवेशसमेषां करिष्याम इति तान्त्समन्तमेवोदागान् परियत्वाऽऽदपश्यंस्तेऽब्रुवन् संस्थापयामेमं यज्ञं यज्ञं नोऽसुरा मा बाधिषुरिति तथेति तं तूष्णींशंसे संस्थापयन् .... । "

अर्थः— " वह देवता अपने आपको विजेता मानकर (फिर) यज्ञका आरम्भ करते हैं असुर फिर उपस्थित हो जाते है हम इनका यज्ञ खण्डित करेंगे यह संकल्प करते हैं, देवता उनको चारों ओरसे घिरे हुए ऊपर खडे हो कर देखते हैं फिर निश्चय करते हैं, कि हम इस यज्ञ कोही समाप्त कर देंगे हमारा यज्ञ कहीं असुर न बिगाड दें ऐसा ही मानकर वह यज्ञ को तूष्णींशंस पर समाप्त कर देते हैं । "

ऊपर जहां जहां लङन्त पद आए हैं वहां वहां हमने वर्तमान अर्थमें उन्हें लिया है क्यों कि महर्षि जैमिनि और तद्भाष्यकार शबरस्वामी के अनुसार वेदकी आख्यायिकाएं सब असत्य हैं । ' गुणवादस्तु ' इस पूर्वमीमांसा सूत्र पर श्री शबरस्वामी का भाष्य इस प्रकार हैः—

"असद्वृत्तान्ताख्यानम्, स्तुत्यर्थेन प्रशंसाया गम्यमानत्वात् । इहान्वाख्याने वर्तमाने द्वयं निष्पद्यते यच्च वृत्तान्तज्ञानम्, यच्च कस्मिंश्चित्प्ररोचना द्वेषो वा, तत्र वृत्तान्तान्वाख्यानं न प्रवर्तकं न निवर्तकं चेति प्रयोजनाभावादविवक्षितं, प्ररोचनया तु प्रवर्तते द्वेषान्निवर्तते इति तयोर्विवक्षा।।"

अर्थः- न हुए (अथवा असत्य) वृत्तान्त की कथा, गुणवाद होती है । प्रशंसा का प्रयोजन स्तुति होता है, कथा के वर्तमान होने पर दो बातें सिद्ध होती हैं एक तो वृत्तांत का ज्ञान दूसरे किसी विषयमें रुचि अथवा

द्वेष, इन में से वृत्तान्त का ज्ञान तो न प्रवृत्ति कराता है और न निवृत्ति कराता है इस कारण प्रयोजन के अभावसे विवक्षित नहीं, रुचि से मनुष्य प्रवृत्त होता है और द्वेष से निवृत्त होता है अतः रुचि और द्वेष की विवक्षा है।"

अब विचारना यह है, कि तूष्णींशंस क्या है जिसे देवता अपना अन्तिर अस्त्र बनाते हैं और असुर अन्य सब देवता ओंके शस्त्रों को जानते हुए भी इसको न जानने के कारण मारे जाते है, इसके साथ ही देव और असुर क्या है यह प्रश्न भी उठता है? प्रकरण पर और पौर्वापर्य पर विचार करने से प्रतीत होता है कि देव मनुष्य की दैवी वृत्तियां हैं और असुर मनुष्य की पाप वृत्तियां हैं, प्रायः इस ऋग्वेद (पदार्थ स्तुति लक्षण) के ब्राह्मण में देव और असुर शब्द इन्हीं अर्थों में आते हैं, तूष्णींशंस मौनभाव (जप) का दूसरा नाम प्रतीत होता है, और इसका संगति करण यूं होगा कि प्रत्येक दैवी वृत्तिके मुकाबलेमें आसुरी वृत्ति है परन्तु तूष्णींशंस (मौनभाव अथवा इंद्रियों का उपरम) एक ऐसा अस्त्र है जिसको असुर नहीं पहचानते और इसी से मारे जाते हैं, वानप्रस्थ पुरुष इसीसे अपनी आसुरी शक्तियोंका संहार करते हैं, और मुनि भी मौनभाव धारण करके ही मुनि बनते हैं, अंग्रेजी में एक कहावत है कि **"भाषण चांदी है और मौन सोना है,"** हमारे शरीर में भी ऐसा ही प्रबंध है, ज्ञानोपार्जन के लिये दो आंखें, दो कान, दो नासिका के छिद्, रसना और त्वचा बनाए गए हैं परन्तु ज्ञानदान, वाणी विसर्जन के लिये केवल एक ही द्वार रक्खा गया है और उस पर भी दांतों का पहरा बिठाया गया है। जरा वाणी अपने मार्ग से इधर उधर हुई नहीं कि दांतों ने उसे काट खाया और आगे के वास्ते चैतन्य कर दिया। फिर यह वाणी होंटों के किवाडों में बन्द रक्खी गई है। जयादि सर्व मौन क्रिया द्वारा होते हैं, मौन में एक आकर्षणशक्ति है, कविकुलगुरु कालिदास भी कहते हैं:—

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः। स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद्वमन्ति।

अर्थः— तपस्वी लोगों में जो शान्ति प्रधान होते हैं एक दग्ध करने वाला तेज होता है, सूर्यकान्त मणि छूने में बड़ी सुखद होती है परन्तु जहां दूसरे किसी प्रकाश की टक्कर लगी त्यूंही उसने अपना तेज प्रकट किया। तपस्वी लोगों का मौन उस राख के समान होता है जो अग्नि के ऊपर आई हुई हो, हाथ लगाने की देर है कि उसका प्रभाव झट प्रकट हो जाता है, इसी भावको दृष्टिमें रख कर रघुवंश में राम को मित वादी कहा है।

'सत्याय मितभाषिणाम्'

सत्य की रक्षा के लिये रघुकुल के भूषण

थोडा बोला करते थे, पिछले दिनों जब महात्मा गांधी हमारे मध्यमें थे तो उनका सप्ताह में एक दिन मौनव्रत का होता था जब वह अपनी बाहर बखेरी हुई शक्तिका संग्रह किया करते थे।

खण्ड के शेष भाग में तूष्णींशंस की और महिमा गाई गई है:—

" तमेवं तूष्णींशंसे संस्थापयन् तमेवं तूष्णींशंसे संस्थाप्य तेनारिष्टेन (यज्ञसे) य उदृचं (अच्छी यज्ञसमाप्ति को) आश्नुवत (प्राप्त होते हैं) स यदा वाव यज्ञः सन्तिष्ठते यदा होता तूष्णींशंसं शंसति य एवं शस्ते तूष्णींशंसं उप वा वदेदनु वा व्याहरेत्त ब्रूयादेव एवैतामार्ति (विनाशको) आरिष्यति (प्राप्त होगा) प्रातर्वाव वयमद्येमं शस्ते तूष्णीं शस्ते संस्थापयामस्तं यथा गृहानितं (अतिथिको) कर्मणा नु समियात् (प्राप्त होते, परिचरण करते है)एवमेवैनमिदमनुसमिम इति सह वाव तामार्तिमृच्छति य एवं विद्वान् संशस्ते उप वा वदति अनु वा व्याहरति तस्मादेवं विद्वान् संशस्ते तूष्णींशंसेनोपवदेन्नानु व्याहरेत्॥

अर्थात् " इस तूष्णींशंस कर्मसे यज्ञ भली भांति समाप्त होता है यदि जप करने वाले मौन बैठे हुए पुरुष की कोई निन्दा करे या उसे शाप दे (यह सायण का अर्थ है, हमारे विचारमें ' इसके पास आकर बोले अथवा इसका अनुकरण करे') तो वही विनाश को प्राप्त होता है। प्रातःकाल कुछ बोलनेसे पूर्व मौन भावसे कुछ मनन करना चाहिये। "

इससे अगले खण्डमें तूष्णींशंस को सबनों की आखें बतलाया है। और इससे पूर्व खण्डमें प्रातरनुवाक को यज्ञ का शिर और धीरे धीरे बोलने और अन्तर्याम (मनन ?) को यज्ञ के प्राण और अपान ठहराया है और लिखा है कि इस धीरे (मनन) बोलने और अन्तर्ध्यान होनेसे पूर्व जो होता (= ऐतरेय ब्राह्मणमें सर्वत्र जीवात्मा) वाणी का विसर्जन करता है वह वज्ररूप हो जाता है। वज्र के द्वारा यजमान के प्राण चले जाते है। फिर आगे चुपचाप अनुमंत्रण (मनन) करके ऊपरको सास लेना लिखा है। उसके लिये मंत्र यह है 'प्राणं मे यच्छ' फिर अन्तर्याम अनुमंत्रण का वर्णन है जिस का मंत्र यह है:—

' प्राण प्राणं मे यच्छेत्यपानं यच्छ स्वाहा '

इस पर श्वास को नीचे उतारा जाता है। फिर वाणी का विसर्जन किया जाता है। अन्त में स्वयं ऐतरेय ऋषिने अपना सिद्धान्त यह ठहराया है कि आत्मा ही उपांशुसवन है आत्मा में ही होता (जीवात्मा) प्राणोंको धारण करके वाणी का विसर्जन करता है; फिर वह मृत्युसे रहित हो जाता है। जो इसको जानता है वह भी सर्वायुको

प्राप्त होता है।

इस (अन्त्योक्त) खण्डमें कुछ प्राणायाम और योगाभ्यास का विज्ञान स्पष्ट उपदिष्ट प्रतीत होता है। अतः इस विषयमें योगी लोग कुछ अधिक प्रकाश डाल सकते हैं और स्वयं इसका भावार्थ खूब समझ सकते हैं। पाठकों को आश्चर्य होगा कि यहां भी सायण अपना प्रिय घसीट लाता है और तीनों खंडों को यज्ञ परक लगाने का व्यर्थ प्रयत्न करता है।

आज यह तूष्णींशंस सूक्तका थोडासा ब्राह्मणोक्त वर्णन पाठकों के आगे इस आशासे धरा जाता है कि वह और हमारे संपादक महाशय इसपर विशेष विचार करें और उक्त विचारक्रम में जो त्रुटि हो वह दूर कर दें उसकी मुझको सूचना दे दें।

देवताओं की मित्रता।

(ले. वैदिक-धर्म-विशारद सूर्य देव शर्मा साहित्यालंकार।)

(१)

ॐ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥

॥ यजु. २५।१४

(गीतिका)

हे दयामय! विश्वमें शुभ, कर्म हम करते रहें।
भव्य भावोंको हृदयमें, हम अभय भरते रहें ॥
वृद्धि हित जिससे दयाकर देव कर धरते रहें।
रात्रि दिन रक्षक रहें, वे भूत दुख हरते रहें ॥ १ ॥

(२)

ॐ देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो निवर्त्तताम्।
देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥

यजु.२५।१५

अर्थः—

हे दयामय! देव जन की बुद्धि मङ्गलकारिणी।
सरल सुयश उदारता आवे हमें दुखहारिणी ॥
देवगणकी मित्रता पावें अबोध-निवारिणी ।
आयु जीवन-हित बढावें देवगण सुख-सारिणी ॥

भगवद्भक्त की भावना।

(शार्दूलविक्रीडितवृत्त)

पाऊँ प्रेम-पुनीत-पाथ-पृथु म, प्रेमी पिता! आपका।
मारूं मत्सर मोहमान ममता, मानी मिताळापका॥
द्वेषी दम्भदुरीहता दुखदका, द्वारा दरूं दापका।
तेरी तन्मयतानतातरणि में, त्यागूं तनू तापका॥

होऊँ मीन तथापि भक्तिजलमें, आमोद पाता रहूँ।
पक्षी होकर पुण्यप्रेम-तरु पै, मैं गान गाता रहूँ॥
भूभृत ऊपर सिन्धुमध्य अथवा, आकाश जाता रहूँ।
हे त्रैलोक्य पिता! सदैव तुमको, सर्वत्र ध्याता रहूँ।

हो आवश्यक ना उपाधिपदवी, वा ख्याति संसारमें।
एकाकी विचरूं अरण्य अगमें, तेरे प्रभो! प्यारमें॥
निन्दा कीर्तिकलाप शाप सुनके, बोलूँ न व्याहारमें।
ऐसी दे दृढ शक्ति भक्ति भगवन्! डोलूँ निराधार मैं॥

तू है चन्द्र, चकोर जान मुझको, ज्योत्स्ना दयादान दे।
तू है अमृतबिन्दु, चातक बना, माँगू मुझे प्राण दे॥
तू है "सूर्य" सरोज रोज मुझको, आलोकदे, त्राण दे।
तू स्वामी, लघु भक्त प्रेमि जनको, सर्वत्र कल्याण दे॥

पुस्तक परिचय।

१ आर्योद्देश रत्नमाला — (ले. श्री. देवीदत्तशर्मा मिश्र आर्य शास्त्री। प्राप्ति स्थान-पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र आर्य समाज हैदराबाद द. मू.।) आर्योद्देश रत्नमाला का पद्यानुवाद। पुस्तक अत्यंत उत्तम है और हरएक आर्यको संग्राह्य है।

२ बाल प्रश्नोत्तरी। मू.-)

३ कन्याप्रश्नोत्तरी। मू.-)

(प्रकाशक—प्रेम पुस्तकालय आग्रा)

प्रश्नोत्तरसे बालकों को बोध करानेके लिये ये पुस्तक हैं।

४ तार दर्पण। मू.।≈ (ले. कुमार स्वरूप वांसाऊ, जयपूर)

५ गोमाता (विनामूल्य) म. टहलराम गिरधारी सामंत, ७३ नागदेवी मुंबई नं ३ यह पुस्तक गोरक्षा के संबंधमें लिखी है इसका सर्वत्र प्रचार होना चाहिये।